

बी.एन. जॉन

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 50 सन् 2025)

02 जनवरी 2025

[न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्न एवं नॉगमेइकापम कोटिस्वर सिंह]

विचारणीय मुद्दा

अपीलकर्ता ने यहां धारा 353 और 186 भा.दं.सं. के अन्तर्गत उद्धृत आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की है।

हेडनोट्स

दंड संहिता, 1860 – धारा 353 और धारा 186 – अपीलकर्ता के अनुसार, वह वंचित बच्चों के लिए उपयोग किए जाने वाले छात्रावास का मालिक है – अपीलकर्ता का आरोप है कि अधिकारियों ने दिनांक 03.06.2015 को अवैध रूप से छापेमारी की और उक्त छात्रावास में रहने वाले बच्चों को किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरित करने की मांग की – अपीलकर्ता ने यह भी तर्क दिया कि उसके खिलाफ एक झूठा आरोप लगाया गया था कि उसने, अपने दल के साथ, छापेमारी करते समय अधिकारियों पर हमला किया और मारपीट की – जिसके अनुसार, अपीलकर्ता और उसकी पत्नी के खिलाफ धारा 353 भा.दं.सं. के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी – इसके बाद, जांच पूरी होने पर, धारा 353 और 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध करने का आरोप लगाते हुए आरोप-पत्र दायर किया गया – अपीलकर्ता ने उक्त आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की है:

अवधारित किया गया : धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि संबंधित लोक सेवक द्वारा अदालत में लिखित रूप से की गई शिकायत को छोड़कर, धारा 172 से 188 भा.दं.सं. (दोनों शामिल) के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान लेने पर अदालत पर प्रतिबंध है – राज्य ने यह दिखाने का एक मामूली प्रयास किया है कि जिला प्रोबेशन अधिकारी द्वारा सिटी मजिस्ट्रेट, वाराणसी को दिनांक 03.06.2015 को वास्तव में एक शिकायत दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता और उनका पक्ष अधिकारियों के काम में बाधा उत्पन्न कर रहे थे – हालांकि, उपरोक्त पत्र की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलता है कि शिकायत के रूप में उक्त पत्र सिटी मजिस्ट्रेट को संबोधित है, न कि किसी न्यायिक मजिस्ट्रेट को – दंड प्रक्रिया संहिता के अर्थ और दायरे में शिकायत का अर्थ न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर की गई शिकायत है, न कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष – धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के तहत जो शिकायत दर्ज

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

की जानी आवश्यक है, वह केवल न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष ही की जा सकती है, न कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष, जिसके पास किसी अपराध का संज्ञान लेने या ऐसे मामलों की सुनवाई करने का अधिकार नहीं है— वर्तमान मामले में, चूंकि शिकायत सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर की गई थी, न कि न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष, इसलिए धारा 195 (1) दं.प्र.सं. की आवश्यकता पूरी नहीं हुई— ऐसी परिस्थितियों में, अपीलकर्ता यह मामला बनाने में सक्षम है कि सीजेएम, वाराणसी की अदालत द्वारा भा.दं.सं. की धारा 186 के तहत अपराध का संज्ञान लेना अवैध था, क्योंकि इस तरह का संज्ञान लेने से पहले दं.प्र.सं. की धारा 195 (1) के तहत एक लोक सेवक द्वारा लिखित में शिकायत की जानी चाहिए थी— जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के तहत अपराध का संज्ञान लेने का सवाल है, एफआईआर में अपीलकर्ता द्वारा आपराधिक बल या हमले का कोई आरोप नहीं है जिससे कि भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के प्रावधान को लागू किया जा सके— एफआईआर में धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के तत्व स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं — चूंकि एफआईआर में भा.दं.सं. की धारा 353 के तहत अपराध के लिए कोई तत्व नहीं पाया गया है, इसलिए सीजेएम द्वारा उस अपराध का संज्ञान लेना जो एफआईआर में नहीं बनाया गया है, सही प्रतीत नहीं होता है। शिकायत/एफआईआर में किसी विशिष्ट कृत्य का उल्लेख नहीं किया गया था, सिवाय इसके कि अपीलकर्ता और उसका पक्ष अशांति पैदा कर रहे थे। यदि “अशांति” को “हमला” या “आपराधिक बल” के रूप में समझा जाना है, बिना ऐसे “अशांति” को “हमला” या “आपराधिक चेहरा” के रूप में भा.दं.सं. की धारा 353 के दायरे में लाने के लिए विशिष्ट कार्यों को जिम्मेदार ठहराया गया है, तो यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। इसके अलावा, दं.प्र.सं. की धारा 161 के तहत बाद में दर्ज किए गए बयानों की विषय-वस्तु स्पष्ट रूप से बाद में सोची गई प्रतीत होती है और मारपीट/हमले का आरोप बाद में लगाया गया, जो मूल एफआईआर की विषय-वस्तु से असंगत है। इस प्रकार, अपीलकर्ता अपने खिलाफ लंबित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का मामला बनाने में सक्षम रहा है। [पैरा 15, 16, 17, 19, 20, 21, 25, 26, 33, 34, 42]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 — धारा 155 — असंज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस पर विशिष्ट प्रतिबंध:

अवधारित किया गया : धारा 155(2) दं.प्र.सं. में यह प्रावधान है कि जब किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को उस थाने की सीमा के भीतर किसी असंज्ञेय अपराध के घटित होने की सूचना दी जाती है, तो वह सूचना के सार को ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में ऐसे प्ररूप में दर्ज करेगा या दर्ज कराएगा, जैसा कि राज्य सरकार इस संबंध में निर्धारित करे, तथा सूचना देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा— धारा 155(2) दं.प्र.सं. में आगे यह प्रावधान है कि कोई भी पुलिस अधिकारी किसी असंज्ञेय मामले की जांच मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करेगा, जिसके पास ऐसे मामले की सुनवाई करने या मामले को सुनवाई के लिए सौंपने का अधिकार है— इस प्रकार, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस पर किसी भी ऐसे असंज्ञेय अपराध की जांच करने पर विशेष प्रतिबंध है। [पैरा 11]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 — धारा 155 — धारा 155 न्यायिक मजिस्ट्रेट या कार्यकारी मजिस्ट्रेट को संदर्भित करती है:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

अवधारित किया गया : चूंकि दं.प्र.सं. की धारा 155 अध्याय XII के तहत संदर्भित मजिस्ट्रेट उस मजिस्ट्रेट को संदर्भित करता है जिसके पास ऐसे मामले की सुनवाई करने या मामले को सुनवाई के लिए सौंपने की शक्ति है और इस प्रकार वह न्यायिक कार्य करता है, इसलिए उसे न्यायिक मजिस्ट्रेट होना चाहिए— इसके अलावा, धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के साथ-साथ धारा 2 (डी) दं.प्र.सं. के तहत, शिकायत संज्ञान लेने वाली अदालत के समक्ष दायर की जानी चाहिए, और धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के तहत जो शिकायत दायर की जानी आवश्यक है, वह केवल न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष हो सकती है, न कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष, जिसके पास किसी अपराध का संज्ञान लेने या ऐसे मामलों की सुनवाई करने का अधिकार नहीं है। [पैरा 19]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – एफआईआर में अपराध की प्रकृति का खुलासा होना चाहिए:

अवधारित किया गया : कोई आपराधिक प्रक्रिया केवल एफआईआर दर्ज करने के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है – हालांकि एफआईआर को घटना के सभी विस्तृत तथ्यों को समाहित करने वाला विश्वकोश नहीं माना जाता है और यह केवल एक दस्तावेज है जो आपराधिक कानूनी प्रक्रिया को शुरू करता है और गति प्रदान करता है, फिर भी इसमें कथित अपराध की प्रकृति का खुलासा होना चाहिए, अन्यथा इसे रद्द किया जा सकता है। [पैरा 25]

उद्धृत केस कानून

हरियाणा राज्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य [1992] सप. 3 एससीआर 735: 1992 सप. 1 एससीसी 335; गुलाम अब्बास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1982] 1 एससीआर 1077: (1982) 1 एससीसी 71; सीबीआई बनाम तपन कुमार सिंह [2003] 3 एससीआर 485: (2003) 6 एससीसी 175 – पर अवलम्ब लिया गया।

पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर [2011] 15 एससीआर 540: (2011) 14 एससीसी 770; आर पी कपूर बनाम पंजाब राज्य [1960] 3 एससीआर 388: एआईआर 1960 एससी 866; बिहार राज्य बनाम पीपी शर्मा [1991] 2 एससीआर 1: 1992 एससीसी (सीआर) 192; झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक और अन्य [2004] सप. 5 एससीआर 790: 2005 एससीसी (सीआर) 283 – संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015; सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005; दंड संहिता, 1860; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973; भारत का संविधान।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

कीवर्ड की सूची

धारा 353 भा.दं.सं.; धारा 186 भा.दं.सं.; धारा 155 दं.प्र.सं.; धारा 195 दं.प्र.सं.; संज्ञेय अपराध; असंज्ञेय अपराध; लोक सेवक; हमला; आपराधिक बल; अशांति; लोक सेवक; लोक सेवक के कार्य में बाधा डालना; न्यायिक मजिस्ट्रेट; कार्यपालक मजिस्ट्रेट; अपराध की प्रकृति; विशिष्ट कार्य।

निम्न मामलों से उद्धृत वाद

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 50/2025

ए 482 संख्या 35311/2023 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांकित 22.09.2023 से उद्धृत

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता : सिद्धार्थ लूथरा, वरिष्ठ अधिवक्ता, अनमोल खेता, श्रीमती तान्या श्रीवास्तव, सुश्री अंशला वर्मा, मोनू कुमार, सूरज मिश्रा, आयुष आनंद, के.एस. जग्गी।

प्रतिवादियों के अधिवक्ता : अजय कुमार मिश्रा, एजी/वरिष्ठ अधिवक्ता, गर्वेश काबरा, अजय सिंह, अवनीश देशपांडे।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

न्यायमूर्ति नोंगमेइकापम कोटिस्वर सिंह

अनुमति प्रदान की गई।

2. वर्तमान अपील आवेदन संख्या 35311/2023 में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'दं.प्र.सं.') की धारा 482 के अंतर्गत इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांकित 22.09.2023 से व्यथित होकर प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता की दिनांक 20.06.2015 की आरोपपत्र संख्या 162/2015, दिनांक 11.08.2015 के संज्ञान लेने और समन जारी करने के आदेश, और भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'भा.दं.सं.') की धाराओं 353 और 186, थाना कैट जिला वाराणसी, उ.प्र. के अंतर्गत मुकदमा अपराध

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

संख्या 290/2015 से उत्पन्न मुकदमा संख्या 9790/2015 की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की याचिका को खारिज कर दिया गया।

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

3. अपीलकर्ता का तर्क है कि वह परिसर का मालिक है और छात्रावास के प्रबंधन और रखरखाव का प्रभारी था, जिसका संचालन सम्पूर्ण विकास भारत नामक एक गैर-सरकारी संगठन द्वारा किया जा रहा था। इस छात्रावास का उपयोग उस समय वंचित बच्चों के लिए किया जाता था, जहां उन्हें आवास, शिक्षा और अन्य आवश्यकताएं प्रदान की जाती थीं।

3.1 अपीलकर्ता के अनुसार, के.वी. अब्राहम नामक व्यक्ति के साथ कुछ व्यक्तिगत विवादों के कारण, अब्राहम ने उसके विरुद्ध छह झूठे मामले दर्ज किए, जिनमें से चार में उसे दोषमुक्त कर दिया गया, जबकि अन्य दो में आरोप मुक्त करने के लिए आवेदन लंबित हैं। अपीलकर्ता के अनुसार, यह अब्राहम के कहने पर ही था कि अधिकारियों ने बिना किसी अनुमति के और बिना कोई पूर्व सूचना दिए मनमाने ढंग से उक्त छात्रावास में छापा मारा, और आरोप लगाया कि किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (संक्षेप में 'जेजे अधिनियम') के प्रावधानों का, जो उस समय लागू था, उक्त छात्रावास को चलाने और प्रबंधित करने में पालन नहीं किया गया।

3.3. यह भी तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध झूठा आरोप लगाया गया था कि उसने अपने दल के साथ मिलकर छापेमारी के दौरान अधिकारियों पर हमला किया तथा मारपीट की, जिसके संबंध में अपीलकर्ता तथा उसकी पत्नी के विरुद्ध एफआईआर दर्ज की गई, जो कि दिनांक 03.06.2015 को धारा 353 भा.दं.सं. के अंतर्गत थाना कैंट, जिला वाराणसी में एफआईआर संख्या 290/2015 के रूप में पंजीकृत की गई।

3.4. अपीलकर्ता को उक्त एफआईआर के आधार पर दिनांक 08.06.2015 को गिरफ्तार किया गया था। हालांकि, उसे उसी दिन जमानत दे दी गई थी। इसके बाद, जांच पूरी होने पर, 20.06.2015 को उक्त एफआईआर के संबंध में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी की अदालत के समक्ष आरोप-पत्र दाखिल किया गया, जिसमें धारा 353 और 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया।

3.5. आरोप पत्र दाखिल होने के फलस्वरूप मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाराणसी ने संज्ञान लिया तथा आदेश दिनांक 11.08.2015 द्वारा अपीलार्थी को सम्मन जारी किया, जिसके विरुद्ध अपीलार्थी ने उक्त आदेश को वापस लेने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, जो सीजेएम, वाराणसी के न्यायालय में विचाराधीन है।

3.6. अपीलकर्ता के अनुसार, धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध का आरोप लगाने वाली शिकायत केवल तभी विचारणीय होगी, जब इससे पहले धारा 195 (1) (ए) दं.प्र.सं. के तहत न्यायालय/मजिस्ट्रेट के समक्ष लोक सेवक द्वारा शिकायत दर्ज की गई हो, लेकिन मजिस्ट्रेट के समक्ष किसी भी लोक सेवक द्वारा ऐसी कोई पूर्व शिकायत दर्ज नहीं की गई थी।

इसके अलावा, हालांकि एफआईआर भा.दं.सं. की धारा 353 के तहत दर्ज की गई थी, लेकिन उक्त धारा के तहत मामला बनाने के लिए कोई तत्व नहीं थे। अपीलकर्ता का यह भी कहना है कि प्राधिकारियों ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से एफआईआर में भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के दंडात्मक प्रावधान को शामिल किया था, ताकि अपीलकर्ता के खिलाफ संज्ञेय अपराध बनाया जा सके, ताकि मजिस्ट्रेट संज्ञान ले सकें, जबकि अपीलकर्ता द्वारा

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

किसी लोक सेवक को उसके कर्तव्य का निर्वहन करने से रोकने के लिए किसी हमले या आपराधिक बल के प्रयोग का कोई मामला नहीं था। इसलिए, सीजेएम, वाराणसी द्वारा धारा 353 भा.दं.सं. के तहत उक्त एफआईआर का संज्ञान लेना अनुचित और अवैध था।

3.7 तदनुसार, अपीलकर्ता ने धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया तथा उक्त कार्यवाही, अर्थात् सीजेएम, वाराणसी के समक्ष लंबित अपराध मामला संख्या 290/2015 को रद्द करने की मांग की तथा उस संबंध में संज्ञान लेने और समन जारी करने के आदेश दिए।

3.8 इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एफआईआर संख्या 290/15 और धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज गवाहों के बयान के अवलोकन के बाद माना कि प्रथम दृष्टया अपीलकर्ता के खिलाफ भा.दं.सं. की उपरोक्त धाराओं 353 और 186 के तहत समन जारी करने और अभियोजन के लिए मामला बनता है और सीजेएम, वाराणसी के समक्ष लंबित उपरोक्त आपराधिक मामले को रद्द करने की उसकी याचिका को अस्वीकार कर दिया।

3.9 अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका को खारिज करते हुए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त द्वारा धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत उपरोक्त कार्यवाही को रद्द करने की मांग करने वाले आवेदन को खारिज करने के उच्च न्यायालय के पहले के फैसले का हवाला दिया, जिसे इस न्यायालय ने 13.04.2017 को एसएलपी को खारिज करके पुष्टि की थी।

वर्तमान आदेश में, उच्च न्यायालय ने पाया कि वर्तमान अपीलकर्ता और सह-अभियुक्तों के खिलाफ आरोप एक जैसे हैं और उनके खिलाफ एकत्र किए गए साक्ष्य भी एक जैसे हैं और चूंकि सह-अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र और संज्ञान को रद्द करने की याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही मेरिट के आधार पर खारिज कर दिया गया था, जिसे इस न्यायालय ने बाधित नहीं किया था, इसलिए वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा दायर धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया और याचिका को खारिज कर दिया गया। तदनुसार, अपीलकर्ता हमारे समक्ष उपस्थित हैं।

अपीलकर्ता का तर्क

4. अपीलकर्ता की यह विशिष्ट तर्क है कि धारा 186 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा संज्ञान तभी लिया जा सकता है, जब लोक सेवक द्वारा न्यायालय में लिखित रूप से शिकायत की गई हो, जैसा कि धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रावधान है। यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में किसी भी लोक अधिकारी द्वारा ऐसी कोई लिखित शिकायत दर्ज नहीं की गई थी, जैसा कि उन्होंने सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत सक्षम प्राधिकारी को दायर एक आवेदन के माध्यम से संबंधित प्राधिकारी से पता लगाया था, जिसके द्वारा उन्हें सूचित किया गया था कि केस संख्या 9790 / 2015 (राज्य बनाम बी.एन. जॉन और अन्य) के संबंध में किसी भी लोक सेवक द्वारा अदालत के समक्ष कोई लिखित शिकायत दर्ज नहीं की गई थी।

4.1 इसके अलावा, धारा 353 भा.दं.सं. के प्रावधान को लागू करने के लिए अभियुक्त द्वारा लोक सेवक को उसके कर्तव्य का निर्वहन करने से रोकने के लिए हमला या आपराधिक बल का स्पष्ट आरोप होना चाहिए।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

हालांकि, एफआईआर को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि अपीलकर्ता के खिलाफ आपराधिक बल या हमले का कोई आरोप नहीं लगाया गया था और तदनुसार, भले ही एफआईआर में लगाए गए आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए, यह भा.दं.सं. की धारा 353 के तहत किसी भी संज्ञेय अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करता है।

4.2 तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है कि सीजेएम, वाराणसी द्वारा उक्त मामले में बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों के तहत संज्ञान लेना पूरी तरह से अवैध और कानून के विरुद्ध है, इसलिए इसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किया जाना चाहिए था। यह तर्क दिया गया कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने, हालांकि, यह टिप्पणी करके खुद को गलत दिशा में निर्देशित किया था कि एफआईआर की सामग्री और धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज गवाहों के बयान के आधार पर प्रथम दृष्टया मामला बनता है।

4.3 यह भी तर्क दिया गया है कि वर्तमान मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय को अन्य सह-अभियुक्तों के संबंध में पारित आदेश पर विचार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि इस अपील में उजागर किए गए कानूनी मुद्दों पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त की शिकायत को खारिज करने की याचिका को खारिज करते समय विचार नहीं किया था। ऐसे में उक्त निर्णय का इस्तेमाल वर्तमान अपीलकर्ता के खिलाफ नहीं किया जा सकता।

प्रतिवादी का तर्क

5. राज्य की ओर से यह दलील दी गई है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय कानून के अनुरूप है और कोई शिकायत नहीं की जा सकती क्योंकि उच्च न्यायालय ने वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रासंगिक कानून लागू किया था।

इसके अलावा, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा पारित तर्कसंगत आदेश में हस्तक्षेप करने में बहुत धीमा होना चाहिए, और आरोपित आदेश को विकृत, अवैध या बिना किसी अधिकार क्षेत्र के नहीं कहा जा सकता है। यह तर्क दिया गया कि केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय द्वारा एक अलग दृष्टिकोण लिया जा सकता था, यह उच्च न्यायालय के निर्णय को अवैध नहीं बनाता है, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है, और उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद आदेश पारित किया।

विश्लेषण

6. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया है।

7. जहां तक आपराधिक मामलों को रद्द करने का सवाल है, अब अदालत द्वारा लागू किए जाने वाले सिद्धांतों के संबंध में कमोबेश सब कुछ तय हो चुका है। इस संबंध में, हरियाणा राज्य बनाम चौधरी भजन लाल एवं अन्य, 1992 सप (1) एससीसी 335 में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें इस न्यायालय ने कुछ सिद्धांतों का सारांश दिया है, जिसके तहत एफआईआर/शिकायत/आपराधिक मामलों को निम्नलिखित शब्दों में रद्द किया जा सकता है:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

“102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर फॉर्मूले को निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हैं और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनाते हैं, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध बनाते हैं, वहां संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा जांच की अनुमति नहीं है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही शुरू करने और उसे जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण तरीके से अभियुक्त पर बदला लेने और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई है।

(प्रभाव वर्धित)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

8. उपर्युक्त मानदंडों में से, खंड संख्या (1), (4) और (6) इस मामले में हमारे लिए प्रासंगिक होंगे।

खंड (1) में यह उल्लेख किया गया है कि जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, तो एफआईआर या शिकायत को रद्द किया जा सकता है।

खंड (4) के अनुसार, जहां एफआईआर में आरोप एक संज्ञेय अपराध नहीं बनाते हैं, बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध बनाते हैं, धारा 155 (2) दं.प्र.सं. के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं है, और ऐसी स्थिति में, एफआईआर को रद्द किया जा सकता है।

इसी प्रकार, जैसा कि खंड (6) में प्रावधान है, यदि दं.प्र.सं. या संबंधित अधिनियम के किसी प्रावधान में कोई स्पष्ट कानूनी रोक है जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है, तो ऐसी कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।

9. हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली, जो विधि व्यवस्था में निहित है, गंभीर और गैर-गंभीर अपराधों से निपटने के लिए अलग-अलग तरीकों पर विचार करती है। जब गंभीर अपराधों से संबंधित शिकायतें दर्ज की जाती हैं, जिन्हें आम तौर पर दं.प्र.सं. के तहत संज्ञेय अपराधों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, तो पुलिस, संज्ञेय अपराध के होने की ऐसी सूचना मिलने पर तुरंत धारा 156 दं.प्र.सं. के तहत जांच शुरू कर सकती है। दूसरी ओर, जब यह गैर-गंभीर अपराधों से संबंधित होता है, जिन्हें आम तौर पर गैर-संज्ञेय अपराधों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, तो कानून आपराधिक न्याय प्रणाली की पूरी ताकत को काम करने देने में अधिक सतर्क होता है। जैसा कि धारा 156 दं.प्र.सं. के तहत विरचित किया गया है, जब यह गैर-संज्ञेय अपराध से संबंधित होता है, तो कुछ सुरक्षा उपाय लागू किए जाते हैं ताकि पुलिस की आक्रामक, घुसपैठ और बलपूर्वक शक्ति को तुरंत लागू न किया जा सके। ऐसी स्थिति में पुलिस के समक्ष किए गए गैर-गंभीर अपराध(ओं) या गैर-संज्ञेय अपराध(ओं) के कथित किसी भी शिकायत की जांच पुलिस द्वारा शुरू करने से पहले न्यायिक मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में कानूनी रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा जांच की जानी चाहिए। इस प्रकार, भले ही पुलिस को गैर-संज्ञेय अपराध से संबंधित ऐसी कोई शिकायत प्राप्त हो, पुलिस मजिस्ट्रेट से हरी झंडी मिले बिना जांच शुरू नहीं कर सकती है। इसके अलावा, जब ऐसे गैर-संज्ञेय अपराध(ओं) का संबंध उन अधिकारियों से होता है, जिन्हें अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोका जाता है, तो मजिस्ट्रेट के पास अतिरिक्त सुरक्षा होती है जो जांच प्राधिकारी को जांच करने की अनुमति देती है। इसके पहले किसी लोक सेवक द्वारा अदालत/मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज की जानी चाहिए। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए है कि मजिस्ट्रेट द्वारा गैर-गंभीर अपराधों या गैर-संज्ञेय अपराधों से संबंधित केवल वास्तविक शिकायतों पर ही विचार किया जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि लोकतंत्र में, नागरिकों का लोक सेवकों के साथ संपर्क अधिक होता है, जिसमें ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जहां जनता के सदस्य लोक सेवकों के काम में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा उन्हें सार्वजनिक कर्तव्यों का उचित ढंग से निर्वहन करने से रोकते हैं।

इन सुरक्षा उपायों के साथ, नागरिकों की स्वतंत्रता और कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य के बाध्यकारी अधिकारों के बीच उत्तम संतुलन बनाए रखा जाता है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

10. उपर्युक्त सिद्धांतों और पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, हम अपने समक्ष पक्षों के मुद्दों और तर्कों की जांच करने के लिए आगे बढ़ेंगे।

11. दं.प्र.सं. का अध्याय XII पुलिस को दी गई सूचना और जांच करने की उनकी शक्तियों से संबंधित है। धारा 155 (2) दं.प्र.सं. में प्रावधान है कि जब किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को उस थाने की सीमा के भीतर किसी असंज्ञेय अपराध के घटित होने की सूचना दी जाती है, तो वह सूचना के सार को उस अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में ऐसे रूप में दर्ज करेगा या दर्ज कराएगा, जैसा कि राज्य सरकार इस संबंध में निर्धारित कर सकती है, और सूचना देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा। धारा 155 (2) दं.प्र.सं. में आगे प्रावधान है कि कोई भी पुलिस अधिकारी ऐसे मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना असंज्ञेय मामले की जांच नहीं करेगा, जिसके पास ऐसे मामले की सुनवाई करने या मामले को सुनवाई के लिए सौंपने की शक्ति है।

धारा 155 दं.प्र.सं. के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

155. असंज्ञेय मामलों के बारे में इत्तिला और ऐसे मामलों का अन्वेषण- (1) जब पुलिस ताने के भारसाधक अधिकारी को उस थाने की सीमाओं के अंदर असंज्ञेय अपराध के किए जाने की इत्तिला दी जाती है तब वह ऐसी इत्तिला का सार, ऐसी पुस्तक में, जो ऐसे अधिकारी द्वारा ऐसे प्रारूप में रखी जाएगी जो राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट करेगा या प्रविष्ट कराएगा और इत्तिला देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास जाने को निर्देशित करेगा।

(2) कोई पुलिस अधिकारी किसी असंज्ञेय मामले का अन्वेषण ऐसे मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करेगा जिसे ऐसे मामले का विचारण करने की या मामले को विचारणार्थ सुपुर्द करने की शक्ति है।

..... ”

इस प्रकार, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस पर किसी भी ऐसे असंज्ञेय अपराध की जांच करने पर विशेष प्रतिबंध है।

12. हालाँकि, ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है जब यह दं.प्र.सं. की धारा 154 और 156 के तहत संज्ञेय अपराध से संबंधित हो, जिसके तहत, किसी पुलिस स्टेशन का कोई भी प्रभारी अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, किसी भी संज्ञेय मामले की जांच कर सकता है, जिसमें ऐसे स्टेशन की सीमाओं के भीतर स्थानीय क्षेत्र पर अधिकार क्षेत्र रखने वाली अदालत को अध्याय XII के प्रावधानों के तहत जांच करने या मुकदमा चलाने का अधिकार होगा, जैसा कि नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

154. संज्ञेय मामलों में इत्तिला - (1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा:

परंतु यदि किसी..... ”

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

156. संज्ञेय मामलों का अन्वेषण करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति – (1) कोई पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकता है, जिसकी जांच या विचारण करने की शक्ति उस थाने की सीमाओं के अंदर के स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय 13 के उपबंधों के अधीन है।

(2)
..... ”

13. जबकि दं.प्र.सं. की धारा 155 सभी गैर-संज्ञेय अपराधों से संबंधित है, जहां पुलिस मजिस्ट्रेट के पूर्व आदेश के बिना जांच नहीं कर सकती है, दं.प्र.सं. की धारा 195 अतिरिक्त शर्तें प्रदान करती है जिसके तहत मजिस्ट्रेट उक्त धारा में उल्लिखित कुछ प्रकार के गैर-संज्ञेय अपराधों के संबंध में संज्ञान ले सकते हैं, जिसमें भा.दं.सं. की धारा 186 शामिल है जिससे हम सीधे संबंधित हैं, केवल संबंधित लोक सेवक द्वारा न्यायालय/मजिस्ट्रेट को लिखित शिकायत दर्ज किए जाने के बाद।

दं.प्र.सं. की धारा 195 के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

195. लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए लोक सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकार के अवमान के लिए अभियोजन – (1)
कोई न्यायालय, –

- (क) (i) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 172 से धारा 188 तक की धाराओं के (जिनके अंतर्गत ये दोनों धाराएं भी हैं) अधीन दंडनीय किसी अपराध का, अथवा
- (ii) ऐसे अपराध के किसी दुष्प्रेरण या ऐसा अपराध करने के प्रयत्न का, अथवा
- (iii) ऐसा अपराध करने के लिए किसी आपराधिक षड्यंत्र का, संज्ञान संबद्ध लोक सेवक के, या किसी अन्य ऐसे लोक सेवक के, जिसके वह प्रशासनिक तौर पर अधीनस्थ है, लिखित परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं;

.....
..... ”

14. चूंकि अपीलकर्ता पर भारतीय दंड संहिता की धारा 186 और 353 के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया है, इसलिए इसे पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा।

धारा 186 भा.दं.सं. इस प्रकार है:

“186. लोक सेवक के लोक कृत्यों के निर्वहन में बाधा डालना – जो कोई किसी लोक सेवक के लोक कृत्यों के निर्वहन में स्वेच्छया बाधा डालेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।"

धारा 353 भा.दं.सं. इस प्रकार है:

"353. लोक सेवक को अपने कर्तव्य के निर्वहन से भयोपरत करने के लिए हमला या आपराधिक बल का प्रयोग — जो कोई किसी ऐसे व्यक्ति पर, जो लोक सेवक हो, उस समय जब वैसे लोक सेवक के नाते वह उसके अपने कर्तव्य का निष्पादन कर रहा हो, या इस आशय से कि उस व्यक्ति को वैसे लोक सेवक के नाते अपने कर्तव्य के निर्वहन से निवारित करे या भयोपरत करे या ऐसे लोक सेवक के नाते उसके अपने कर्तव्य के विधिपूर्ण निर्वहन में की गई या की जाने के लिए प्रयत्नित किसी बात के परिणामस्वरूप हमला करेगा या आपराधिक बल का प्रयोग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।"

15. धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के अवलोकन से स्पष्ट है कि न्यायालय पर धारा 172 से 188 (दोनों सम्मिलित) भा.दं.सं. के अंतर्गत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान लेने पर प्रतिबंध है, सिवाय संबंधित लोक सेवक द्वारा न्यायालय में लिखित शिकायत के। इसलिए, यदि यह पाया जाता है, जैसा कि अपीलकर्ता ने तर्क दिया है कि उसके खिलाफ धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध के संबंध में, संबंधित लोक सेवक द्वारा धारा 195 (1) (ए) दं.प्र.सं. के तहत ऐसी कोई शिकायत दर्ज नहीं की गई थी, तो सीजेएम धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संज्ञान नहीं ले सकते थे। इस संबंध में, अपीलकर्ता ने विशेष रूप से दलील दी है, जिस पर राज्य की ओर से कोई खंडन नहीं किया गया है कि किसी लोक सेवक द्वारा लिखित रूप में ऐसी कोई शिकायत नहीं की गई थी, जैसा कि धारा 195(1) दं.प्र.सं. के तहत अपीलकर्ता द्वारा धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध किए जाने के संबंध में अपेक्षित है।

16. तथापि, राज्य ने यह दर्शाने का एक कमजोर प्रयास किया है कि जिला प्रोबेशन अधिकारी द्वारा दिनांक 03.06.2015 को सिटी मजिस्ट्रेट, वाराणसी को वास्तव में एक शिकायत दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता और उनका पक्ष सम्पूर्ण डेवलपमेंट इंडिया द्वारा अवैध रूप से संचालित संस्था में रहने वाले नाबालिग बच्चों को अन्य अनुमोदित संस्थाओं में भेजने की प्रक्रिया में अधिकारियों के काम में बाधा उत्पन्न कर रहे थे और सिटी मजिस्ट्रेट से अनुरोध किया गया था कि वे इसका संज्ञान लें और कानूनी कार्रवाई करें।

उपरोक्त शिकायत इस प्रकार है:

“सेवा में,

सिटी मजिस्ट्रेट

वाराणसी

महोदय,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

आपके आदेश दिनांक 3 जून 2015, पत्र संख्या 1346 द्वारा श्री बी.एन. जॉन, सुश्री सुजैन जॉन और उनके लोग सम्पूर्ण विकास ट्रस्ट द्वारा संचालित गैर-कानूनी संस्था में रहने वाले नाबालिग बच्चों को कानूनी रूप से अन्य संस्थाओं में भेजने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। कृपया इसका संज्ञान लें और आगे की कानूनी कार्रवाई करें।

सादर

प्रभात रंजन

03/06/2013

जिला प्रोबेशन अधिकारी।

थानाध्यक्ष कैंट/सीओ कैंट।

एस/ओ महत्वपूर्ण कार्य में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं, आवश्यक कार्रवाई की जाय।”

17. हालांकि, उपरोक्त पत्र की सावधानीपूर्वक जांच करने पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलू सामने आएंगे। शिकायत के रूप में उक्त पत्र सिटी मजिस्ट्रेट को संबोधित है, न कि किसी न्यायिक मजिस्ट्रेट को। शिकायत क्या है, इसे धारा 2 (डी) दं.प्र.सं. के तहत परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:

“2. परिभाषाएँ.—इस संहिता में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

(क)

(ख)

(ग)

(घ) “परिवाद” से इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कार्रवाई किए जाने की दृष्टि से मौखिक या लिखित रूप में उससे किया गया यह अभिकथन अभिप्रेत है कि किसी व्यक्ति ने, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, अपराध किया है, किंतु इसके अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट नहीं है।”

इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता के अर्थ और दायरे में शिकायत का अर्थ न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर की गई शिकायत होगी, न कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष।

18. जहां तक न्यायिक मजिस्ट्रेट और कार्यकारी मजिस्ट्रेट के बीच अंतर का प्रश्न है, इसे इस न्यायालय ने गुलाम अब्बास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1982) 1 एससीसी 71 में इस प्रकार स्पष्ट किया है:

“24. 1973 की संहिता की बात करें तो न्यायिक मजिस्ट्रेटों को कार्यकारी मजिस्ट्रेटों से अलग करने की योजना, जिसमें न्यायिक कार्यों को पूर्व में और कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यों को बाद में आवंटित किया गया था, जैसा कि हम अभी इंगित करेंगे, संहिता में काफी हद तक लागू किया गया है। धारा 6 में प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य में चार प्रकार की आपराधिक अदालतें

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

होंगी, अर्थात् (i) सत्र न्यायालय, (ii) प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट और किसी महानगरीय क्षेत्र में महानगर मजिस्ट्रेट; (iii) द्वितीय श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट; और (iv) कार्यपालक मजिस्ट्रेट; अन्य बातों के साथ-साथ धारा 8 से 19 में महानगरीय क्षेत्र की घोषणा, सत्र न्यायालयों, न्यायिक मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों, महानगरीय मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों की स्थापना तथा सत्र न्यायाधीशों, अपर सत्र न्यायाधीशों, सहायक सत्र न्यायाधीशों, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों, न्यायिक मजिस्ट्रेटों, मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेटों और महानगरीय मजिस्ट्रेटों की परस्पर अधीनता के साथ नियुक्ति का प्रावधान है, किन्तु सभी नियुक्तियां उच्च न्यायालय द्वारा की जानी अपेक्षित हैं, जबकि धारा 20, 21, 22 और 23 में प्रत्येक जिले और महानगरीय क्षेत्र में जिला मजिस्ट्रेटों, अपर जिला मजिस्ट्रेटों, कार्यपालक मजिस्ट्रेटों, उप-विभागीय मजिस्ट्रेटों और विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति और उनके संबंधित अधिकार क्षेत्र के साथ-साथ परस्पर अधीनता का प्रावधान है, किन्तु नियुक्तियां राज्य सरकार द्वारा की जाएंगी। अध्याय III, जिसमें धारा 26 से 35 शामिल हैं, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को दंड देने की शक्तियों से पूरी तरह से बाहर रखा गया है, जो न्यायिक मजिस्ट्रेटों को प्रदान की गई हैं; यह दर्शाता है कि यदि कोई व्यक्ति अपने प्रशासनिक या कार्यकारी कार्य के प्रयोग में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किसी आदेश का उल्लंघन करता है, तो उसे दोषसिद्धि पर दंड पाने के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष चुनौती देनी होगी या मुकदमा चलाना होगा। इसके अतिरिक्त, यदि वर्तमान संहिता की कुछ धाराओं की तुलना पुरानी संहिता की समतुल्य धाराओं से की जाए तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि न्यायिक कार्यों और कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यों के बीच पृथक्करण किया गया है, क्योंकि इसमें न्यायिक कार्यों को न्यायिक मजिस्ट्रेटों को तथा कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यों को कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को सौंप दिया गया है। उदाहरण के लिए, धारा 106 के तहत किसी व्यक्ति को कुछ प्रकार के अपराधों के लिए दोषी ठहराए जाने पर उससे शांति और अच्छे आचरण बनाए रखने के लिए बांड के निष्पादन के माध्यम से सुरक्षा प्राप्त करके तीन वर्ष से अधिक की अवधि के लिए रिहा करने की शक्ति – एक न्यायिक कार्य अब विशेष रूप से न्यायिक मजिस्ट्रेट को सौंपा गया है जबकि पुरानी संहिता की धारा 106 के तहत ऐसी शक्ति का प्रयोग प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट द्वारा किया जा सकता था; लेकिन अन्य मामलों में शांति बनाए रखने के लिए सुरक्षा के रूप में एक समान बांड के निष्पादन को निर्देशित करने की शक्ति, जहां ऐसे व्यक्ति द्वारा शांति भंग करने या सार्वजनिक शांति को भंग करने की संभावना है – कानून और व्यवस्था और सार्वजनिक शांति बनाए रखने के लिए पुलिस का एक कार्यकारी कार्य जो पुराने धारा 107 के तहत प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट आदि को प्रदान किया गया था, अब वर्तमान धारा 107 के तहत विशेष रूप से कार्यकारी मजिस्ट्रेट को सौंपा गया है; नई संहिता का अध्याय X सार्वजनिक व्यवस्था और शांति बनाए रखने के विषय से संबंधित है और उस अध्याय में धारा 129 से 132 गैरकानूनी जमावड़ों और उनके फैलाव से संबंधित हैं, धारा 133 से 143 सार्वजनिक उपद्रव और उनके निवारण या हटाने से संबंधित हैं, धारा 144 उपद्रव के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

जरूरी मामलों और सार्वजनिक शांति के लिए खतरे की आशंका से संबंधित है और धारा 145 से 148 शांति भंग होने की संभावना वाले अचल संपत्तियों से संबंधित विवादों से संबंधित हैं – ये सभी कार्यकारी ("पुलिस") कार्यों की प्रकृति के हैं, इस संबंध में शक्तियां विशेष रूप से कार्यकारी मजिस्ट्रेटों में निहित की गई हैं जबकि पुरानी संहिता के तहत समकक्ष प्रावधानों के तहत ऐसी शक्तियां किसी भी मजिस्ट्रेट को, चाहे वह न्यायिक हो या कार्यकारी, बिना किसी भेदभाव के प्रदान की गई थीं। विशेष रूप से यह कहा जा सकता है कि जहां पुरानी धारा 144 के तहत सार्वजनिक शांति के लिए उपद्रव या खतरे की आशंका वाले तत्काल मामलों में कार्रवाई करने की शक्ति "जिला मजिस्ट्रेट, मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त किसी अन्य मजिस्ट्रेट" को प्रदान की गई थी, वहीं वर्तमान धारा 144 के तहत यह शक्ति "जिला मजिस्ट्रेट, सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार द्वारा विशेष रूप से सशक्त किसी अन्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट" को प्रदान की गई है। 1973 की संहिता के तहत न्यायिक कार्यों को कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यों से अलग करने और पूर्व को न्यायिक मजिस्ट्रेटों को और बाद वाले को कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को आवंटित करने की अवधारणा के ऐसे कार्यान्वयन को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी 5 और 6 के अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार करना मुश्किल होगा कि वर्तमान धारा 144 के तहत जिला मजिस्ट्रेट, सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट या किसी अन्य कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश एक न्यायिक या अर्ध न्यायिक आदेश है, इसके तहत कार्य अनिवार्य रूप से एक कार्यकारी (पुलिस) कार्य है.....।"

19. चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XII के तहत धारा 155 के अंतर्गत संदर्भित मजिस्ट्रेट से तात्पर्य ऐसे मजिस्ट्रेट से है, जिसके पास ऐसे मामले की सुनवाई करने या मामले को सुनवाई के लिए सौंपने की शक्ति है और इस प्रकार वह न्यायिक कार्य करता है, इसलिए उसे न्यायिक मजिस्ट्रेट होना चाहिए। इसके अलावा, धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के साथ धारा 2 (डी) दं.प्र.सं. के अंतर्गत, शिकायत को संज्ञान लेने वाली अदालत के समक्ष दायर किया जाना चाहिए, और धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के तहत दायर की जाने वाली शिकायत केवल न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष हो सकती है, न कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट के पास, जिसके पास किसी अपराध का संज्ञान लेने या ऐसे मामलों की सुनवाई करने की शक्ति नहीं है।

20. वर्तमान मामले में, चूंकि शिकायत सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर की गई थी, न कि न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष, इसलिए धारा 195 (1) दं.प्र.सं. की आवश्यकता पूरी नहीं हुई।

21. ऐसी परिस्थितियों में, हम संतुष्ट हैं कि अपीलकर्ता यह मामला बनाने में सक्षम है कि सीजेएम, वाराणसी की अदालत द्वारा धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संज्ञान लेना अवैध था, क्योंकि इस तरह का संज्ञान लेने से पहले धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के तहत एक लोक सेवक द्वारा लिखित में शिकायत की जानी चाहिए थी। न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने से पहले लोक सेवक द्वारा लिखित शिकायत करना अनिवार्य है, जिसके अभाव में भारतीय दंड संहिता की धारा 186 के तहत दंडनीय किसी भी अपराध के लिए लिया जा रहा संज्ञान निरस्त हो जाएगा।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

22. इससे हम अगले विचारणीय बिंदु पर पहुंचते हैं कि क्या सीजेएम, वाराणसी द्वारा धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संज्ञान लेना उचित था या नहीं।

23. किसी निषिद्ध कार्य को धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के दायरे में आने के लिए, ऐसे कार्य को या तो हमला या आपराधिक बल के रूप में योग्य होना चाहिए जिसका उद्देश्य लोक सेवक को उसके कर्तव्य के निर्वहन से रोकना हो। जाहिर है, ऐसा कार्य केवल बाधा डालने का कार्य नहीं हो सकता जो धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध है। धारा 353 भा.दं.सं. के तहत विचारित अपराध अधिक गंभीर प्रकृति का है जिसमें आपराधिक बल या हमला शामिल है जिसके लिए अधिक कठोर सजा दी जा सकती है जो दो साल तक बढ़ाई जा सकती है। दूसरी ओर, धारा 186 भा.दं.सं. के तहत शामिल बाधा डालने का अपराध कारावास से दंडनीय है, जो अधिकतम तीन महीने तक बढ़ाया जा सकता है।

धारा 353 भा.दं.सं. की गहन जांच से पता चलता है कि उपरोक्त अपराध को लागू करने के लिए, किसी लोक सेवक पर उसके आधिकारिक कर्तव्य के निष्पादन में या ऐसे लोक सेवक को उसके कर्तव्य का निर्वहन करने से रोकने या हतोत्साहित करने के इरादे से आपराधिक बल का प्रयोग या हमला किया जाना चाहिए। धारा 186 भा.दं.सं. और धारा 353 के प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि धारा 353 भा.दं.सं. अपराध का गंभीर रूप है, जिसमें आपराधिक बल या हमला शामिल है। धारा 186 भा.दं.सं. के मामले के विपरीत, जहां किसी सरकारी कर्मचारी को उसके आधिकारिक कार्य के निर्वहन में स्वेच्छा से बाधा डालना उक्त धारा को लागू करने के लिए पर्याप्त है, धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न केवल बाधा डालना बल्कि सरकारी कर्मचारी पर आपराधिक बल या हमले का वास्तविक उपयोग भी आवश्यक है।

24. तथापि, वर्तमान मामले में एफआईआर की विषय-वस्तु के अवलोकन से यह देखा जा सकता है कि हमले या आपराधिक बल के प्रयोग का कोई आरोप नहीं लगाया गया है। उक्त एफआईआर जिला प्रोबेशन अधिकारी द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत पर आधारित है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, तथा उक्त एफआईआर में भी इसे शब्दशः उद्धृत किया गया है, जिसमें केवल व्यवधान उत्पन्न करने का आरोप लगाया गया है।

25. एफआईआर में अपीलकर्ता द्वारा आपराधिक बल या हमले का कोई आरोप नहीं है जिससे धारा 353 भा.दं.सं. का प्रावधान लागू किया जा सके। यह याद रखना चाहिए कि एक आपराधिक प्रक्रिया केवल एफआईआर दर्ज होने के साथ ही शुरू होती है। हालांकि एफआईआर को घटना के सभी विस्तृत तथ्यों को समाहित करने वाला विश्वकोश नहीं माना जाता है और यह केवल एक दस्तावेज है जो आपराधिक कानूनी प्रक्रिया को शुरू करता है और गति प्रदान करता है, फिर भी इसमें कथित अपराध की प्रकृति का खुलासा होना चाहिए क्योंकि अन्यथा इसे भजन लाल (उपरोक्त) के मामले (निर्णय के पैरा 102 के खंड 1 के अनुसार) में निर्धारित किए अनुसार रद्द किया जा सकता है।

इस न्यायालय ने सीबीआई बनाम तपन कुमार सिंह (2003) 6 एससीसी 175 में निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

"20. यह सुस्थापित है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट एक विश्वकोश नहीं है, जिसमें रिपोर्ट किए गए अपराध से संबंधित सभी तथ्य और विवरण प्रकट किए जाने चाहिए। एक सूचनादाता किसी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

अपराध के होने के बारे में रिपोर्ट दर्ज कर सकता है, भले ही उसे पीड़ित या उसके हमलावर का नाम न पता हो। हो सकता है कि उसे यह भी पता न हो कि घटना कैसे हुई। अपराध के सभी पहलुओं को विस्तार से बताने के लिए प्रथम सूचनाकर्ता का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि दी गई सूचना में संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा होना चाहिए और दर्ज की गई सूचना पुलिस अधिकारी को संज्ञेय अपराध के होने का संदेह करने का आधार प्रदान करनी चाहिए। इस स्तर पर यह पर्याप्त है कि पुलिस अधिकारी दी गई सूचना के आधार पर किसी संज्ञेय अपराध के होने का संदेह करता है, न कि यह कि उसे इस बात पर आश्वस्त या संतुष्ट होना चाहिए कि कोई संज्ञेय अपराध किया गया है। यदि प्राप्त सूचना के आधार पर उसे संदेह हो कि कोई संज्ञेय अपराध किया गया है, तो वह सूचना दर्ज करने तथा जांच करने के लिए बाध्य है। इस स्तर पर उसके लिए सूचना की सत्यता के बारे में स्वयं संतुष्ट होना भी आवश्यक नहीं है.....।

(प्रभाव वर्धित)

26. तथापि, संबंधित एफआईआर के अवलोकन से ऐसा कुछ भी संकेत नहीं मिलता है कि अपीलकर्ता ने लोक सेवक पर आपराधिक बल का प्रयोग किया है या हमला किया है, सिवाय बाधा पहुंचाने के अपराध के, जो धारा 186 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय है। इस प्रकार, धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के तत्व एफआईआर में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं। इस हद तक, हम अपीलकर्ता से सहमत हैं कि चूंकि धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के लिए कोई तत्व एफआईआर में नहीं पाया गया है, इसलिए सीजेएम द्वारा उस अपराध का संज्ञान लेना जो एफआईआर में नहीं बनता है, सही प्रतीत नहीं होता है।

27. हालांकि, उच्च न्यायालय ने माना है कि एफआईआर की सामग्री और धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज गवाहों द्वारा दिए गए बयान के अवलोकन के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 353 और धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध करने का प्रथम दृष्टया मामला बनता है। यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 186 भा.दं.सं. का उल्लेख किए बिना धारा 353 भा.दं.सं. के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी।

वर्तमान मामले में ध्यान देने वाली बात यह है कि यदि अपीलकर्ता ने वास्तव में आपराधिक बल का प्रयोग किया था या लोक सेवकों पर हमला किया था, जो उक्त कृत्यों को धारा 353 भा.दं.सं. के दायरे में लाता है, तो शिकायतकर्ता को प्रथम सूचनादाता के रूप में एफआईआर में इसका उल्लेख करने से कोई नहीं रोक सकता। यदि एफआईआर में ऐसे महत्वपूर्ण और निर्णायक तथ्य गायब हैं, जिनके बारे में शिकायतकर्ता को पूरी जानकारी थी और वह पहले से ही उनसे परिचित था, जिनका उल्लेख वह पहली बार में कर सकता था, तो यह संकेत देगा कि मामले में शिकायतकर्ता द्वारा इन तथ्यों का बाद में उल्लेख करना एक बाद का विचार होगा, जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ है। अपीलकर्ता द्वारा कथित रूप से हमला करने या आपराधिक बल का प्रयोग करने के तथ्य को बाद में पता नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि ये आपत्तिजनक कृत्य, यदि वास्तव में हुए थे, तो एफआईआर/शिकायत दर्ज होने से पहले हुए होंगे और इस प्रकार एफआईआर में उनका उल्लेख होना चाहिए था। ये कृत्य बाद में नहीं हुए थे, बल्कि शिकायतकर्ता को तब पता चल जाता जब ये तब हुए थे जब शिकायतकर्ता और अधिकारीगण अपीलकर्ता द्वारा प्रबंधित छात्रावास पर छापा मार रहे थे। इस प्रकार, इन कथित कृत्यों का उल्लेख न किया जाना, जो धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के घटक हैं, प्राथमिकी को कानूनी रूप से अपुष्ट

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

बना देता है, जहां तक धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संबंध है। हमें कोई कारण नहीं दिखता कि शिकायतकर्ता ने एफआईआर में यह उल्लेख क्यों नहीं किया कि जब वे परिसर में छापेमारी कर रहे थे तो सरकारी कर्मचारियों को उनके आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकने के लिए कथित तौर पर आपराधिक बल का प्रयोग किया गया या उन पर हमला किया गया।

28. उच्च न्यायालय के आदेश से यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने जांच के दौरान धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज गवाहों के बयानों का भी अवलोकन किया था। हमने जिला प्रोबेशन अधिकारी श्री प्रभात रंजन, सिटी मजिस्ट्रेट श्री सत्येन्द्र नाथ शुक्ला, अपर जिला मजिस्ट्रेट श्री विन्धवसिनी राय, तथा एसीएम-IV श्री सुरेन्द्र दत्त सिंह द्वारा दिए गए बयानों को भी पढ़ा है।

रोचक बात यह है कि वाराणसी के जिला प्रोबेशन अधिकारी श्री प्रभात रंजन, जिन्होंने सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी, ने धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज अपने बयान में कहा कि छात्रावास परिसर में मौजूद लोगों ने आधिकारिक टीम पर हमला किया और उसके बाद प्राथमिकी दर्ज की गई। हालांकि, जब अधिकारियों पर हमले की कथित घटना के तुरंत बाद एफआईआर दर्ज की गई थी, तो उनके द्वारा दर्ज की गई शिकायत में हमले के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया था, जो एफआईआर दर्ज करने का आधार था, जिसे हम समझ नहीं पा रहे हैं। अगर वास्तव में कोई हमला हुआ था जैसा कि आरोप लगाया गया है, तो इसका उल्लेख एफआईआर में या घटना के तुरंत बाद सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज की गई लिखित शिकायत में होना चाहिए था।

29. हमने सिटी मजिस्ट्रेट श्री सत्येंद्र नाथ शुक्ला के बयान का भी अवलोकन किया है, जिन्होंने 20.06.2015 को धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज अपने बयान में कहा था कि छात्रावास परिसर में मौजूद लोग “कार्यवाही के दौरान सरकारी काम में बाधा उत्पन्न कर रहे थे। ऐसे में जब दोबारा अभिलेख प्रस्तुत करने के लिए कहा गया तो पति-पत्नी व उनके साथ कुछ अन्य लोग ऊंची आवाज में बोलकर आक्रामक हो गए, जिससे किसी तरह बचकर निकलने का प्रयास करते हुए शाम करीब साढ़े पांच बजे पति-पत्नी व अन्य लोगों ने कार्य में बाधा उत्पन्न कर विकट परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे राहत कार्य सफलतापूर्वक नहीं हो पाया। इसके बाद महिला जिला कार्यक्रम अधिकारी द्वारा जिला उद्यान अधिकारी की मदद से कुछ बच्चों को बचाया गया और बच्चों को रामनगर भेजा गया, जिसके बाद उन्हें मुक्त कराया गया। "इसके बाद जब हमने रिकॉर्ड मांगा तो बेन जॉन ऊंची आवाज में बोलने लगे और उनकी पत्नी और अन्य बच्चे बहुत नाराज हो गए और जबरदस्ती करने पर आमादा लग रहे थे। इसके बाद जिला प्रोबेशन अधिकारी मेरे पास सरकारी काम में बाधा और मारपीट से संबंधित प्रार्थना पत्र लेकर आए, जिस पर मैंने आदेश पारित किया और थानाध्यक्ष कैंट ने मामला दर्ज किया।"

सिटी मजिस्ट्रेट के उक्त बयान की जांच करने पर, हमारा मानना है कि यदि उक्त बयान को उसके अंकित मूल्य पर लिया जाए, तो भी इसमें धारा 353 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराध करने के लिए आपराधिक बल या हमले का कोई तत्व प्रकट नहीं होता है, सिवाय एक स्पष्ट बयान के कि वे आक्रामक थे, लेकिन यह नहीं बताया गया कि किस प्रकार अधिकारियों को बाधित किया गया या उन पर हमला किया गया।

30. हमने जिले के एसीएम-4 श्री सुरेन्द्र दत्त सिंह द्वारा दिए गए बयान को भी पढ़ा है। हालांकि उन्होंने उल्लेख किया है कि अपीलकर्ता और अन्य लोग आक्रामक हो गए और उन्होंने सभी अधिकारियों पर हमला कर दिया,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

लेकिन यह नहीं बताया गया है कि उन पर हमला कैसे किया गया, बल्कि बिना किसी विशेष जानकारी के केवल एक बहुत ही सामान्य आरोप लगाया गया है।

इसी प्रकार, अन्य गवाहों ने भी यही बात कही।

31. हमें कोई कारण नहीं दिखता कि उपरोक्त कथित हमले का उल्लेख एफआईआर में क्यों नहीं किया गया, क्योंकि छात्रावास परिसर में कथित घटना घटने के तुरंत बाद एफआईआर दर्ज कर ली गई थी। दूसरी ओर, सिटी मजिस्ट्रेट को लिखित शिकायत में केवल "बाधा उत्पन्न करने" की अभिव्यक्ति का उपयोग किया गया है, जिसमें कहा गया है कि "श्री बी.एन. जॉन, सुश्री सुजेन जॉन और उनके लोग सम्पूर्णा विकास ट्रस्ट द्वारा संचालित गैर-कानूनी संस्था में रहने वाले नाबालिग बच्चों को कानूनी रूप से अन्य संस्थाओं में भेजने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं।" कृपया इसका संज्ञान लें और आगे की कानूनी कार्रवाई करें।"

32. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि धारा 353 भा.दं.सं. के तहत उल्लिखित और धारा 350 और 351 भा.दं.सं. के तहत परिभाषित "उपद्रव पैदा करना" और "हमला" तथा "आपराधिक बल" शब्दों के बीच बहुत अंतर है।

"आपराधिक बल" को भा.दं.सं. की धारा 350 के तहत परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:

"350. आपराधिक बल – जो कोई किसी व्यक्ति पर उस व्यक्ति की सम्मति के बिना बल का प्रयोग किसी अपराध को करने के लिए उस व्यक्ति को, जिस पर बल का प्रयोग किया जाता है, क्षति, भय या क्षोभ, ऐसे बल के प्रयोग से कारित करने के आशय से, या ऐसे बल के प्रयोग से सम्भाव्यतः कारित करेगा यह जानते हुए साशय करता है, वह उस अन्य व्यक्ति पर आपराधिक बल का प्रयोग करता है, यह कहा जाता है।"

धारा 351 भा.दं.सं. के तहत "हमला" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"351. हमला– जो कोई, कोई अंगविक्षेप या कोई तैयारी इस आशय से करता है, या यह सम्भाव्य जानते हुए करता है कि ऐसे अंगविक्षेप या ऐसी तैयारी करने से किसी उपस्थित व्यक्ति को यह आशंका हो जाएगी कि जो वैसा अंगविक्षेप या तैयारी करता है, वह उस व्यक्ति पर आपराधिक बल का प्रयोग करने ही वाला है, वह हमला करता है, यह कहा जाता है।"

स्पष्टीकरण – केवल शब्द हमले की कोटि में नहीं आते। किन्तु जो शब्द कोई व्यक्ति प्रयोग करता है, वे उसके अंगविक्षेप या तैयारियों को ऐसा अर्थ दे सकते हैं जिससे वे अंगविक्षेप या तैयारियां हमले की कोटि में आ जाएं।

33. यदि "अशांति" को "हमला" या "आपराधिक बल" के रूप में समझा जाना है, बिना ऐसे "अशांति" को "हमला" या "आपराधिक चेहरा" के रूप में धारा 353 भा.दं.सं. के दायरे में लाने के लिए विशिष्ट कार्य किए बिना, यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। यद्यपि "अशांति" आपराधिक बल या हमले के प्रयोग से भी उत्पन्न हो सकती है, जब तक कि उस प्रभाव से संबंधित विशिष्ट कृत्यों के साथ विशिष्ट आरोप न हों, केवल "अशांति पैदा करने" के आरोप का अर्थ धारा 353 भा.दं.सं. के दायरे में "आपराधिक बल" या "हमला" का प्रयोग नहीं हो सकता है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

34. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और चर्चा की गई है, शिकायत/एफआईआर में किसी भी विशिष्ट कृत्य का उल्लेख नहीं किया गया है, सिवाय इसके कि अपीलकर्ता और उसके पक्ष ने अशांति पैदा की है। इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि हमले या आपराधिक बल के इस्तेमाल के कारण अशांति कैसे पैदा हुई।

इस प्रकार, धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत बाद में दर्ज किए गए बयानों की विषय-वस्तु स्पष्ट रूप से बाद में सोची गई प्रतीत होती है और मारपीट/हमले का आरोप बाद में लगाया गया है, जो मूल एफआईआर की विषय-वस्तु से असंगत है।

35. इन परिस्थितियों में, हमारा मानना है कि एफआईआर/प्रथम शिकायत में इन महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख न करना, जो धारा 353 भा.दं.सं. के दायरे में हमला या आपराधिक बल का संकेत देते हैं, सीजेएम द्वारा लिए गए संज्ञान को प्रभावित करेगा। ये महत्वपूर्ण तथ्य, जो धारा 353 भा.दं.सं. के तहत अपराध के लिए तत्व बनाते हैं, एफआईआर में प्रकट नहीं किए गए थे। दूसरी ओर, एफआईआर की विषय-वस्तु से केवल लोक सेवकों के आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा डालने के गैर-संज्ञेय अपराध का पता चलता है, जो धारा 186 भा.दं.सं. के दायरे में आएगा, ऐसी स्थिति में न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस द्वारा उक्त एफआईआर में अपीलकर्ता के खिलाफ कोई जांच शुरू नहीं की जा सकती थी।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त एफआईआर में धारा 186 भा.दं.सं. का उल्लेख तक नहीं किया गया था। हमने पहले ही पाया है कि अपीलकर्ता और उसके पक्ष के खिलाफ मजिस्ट्रेट/अदालत के समक्ष किसी लोक सेवक द्वारा धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध करने का आरोप लगाते हुए कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई गई थी, जैसा कि धारा 195 (1) सपठित धारा 155 दं.प्र.सं. के तहत आवश्यक है। जिला परिवीक्षा अधिकारी द्वारा दायर की गई लिखित शिकायत न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं बल्कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष की गई थी, इसलिए वह वैध नहीं थी। पुलिस उक्त अपराध की जांच धारा 186 भा.दं.सं. के तहत नहीं कर सकती थी। इस प्रकार, धारा 353 भा.दं.सं. के तहत प्राथमिकी के आधार पर सीजेएम, वाराणसी द्वारा प्रारंभिक चरण में संज्ञान लेने का कार्य, जो धारा 353 भा.दं.सं. के तहत संज्ञेय अपराध के अवयवों और किए जाने का खुलासा नहीं करता है, कानून के विपरीत प्रतीत होता है। यदि प्रारंभिक प्रक्रिया दूषित हो तो आगामी प्रक्रिया भी दूषित हो जाएगी।

पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर (2011) 14 एससीसी 770 में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"107. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि यदि प्रारंभिक कार्रवाई कानून के अनुरूप नहीं है, तो सभी बाद की और परिणामी कार्यवाही इस कारण से विफल हो जाएगी कि अवैधता आदेश की जड़ पर प्रहार करती है। ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, कानूनी कहावत सबलाटो फंडामेंटो कैडिट ओपस जिसका अर्थ है कि नींव हटा दिए जाने पर, संरचना/कार्य गिर जाता है, लागू होती है और वर्तमान मामले में सभी बिंदुओं पर लागू होती है।

108. बद्रीनाथ बनाम टीएन सरकार [(2000) 8 एससीसी 395: 2001 एससीसी (एल एंड एस) 13: एआईआर 2000 एससी 3243] और केरल राज्य बनाम पुथेनकावु एनएसएस

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

कार्यायोगम [(2001) 10 एससीसी 191] में इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि एक बार कार्यवाही का आधार समाप्त हो जाने पर, सभी परिणामी कार्य, कार्रवाई, आदेश स्वचालित रूप से समाप्त हो जाएंगे और यह सिद्धांत न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और प्रशासनिक कार्यवाही पर समान रूप से लागू होता है।"

36. अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि पुलिस ने धारा 353 भा.दं.सं. के तहत एफआईआर दर्ज की और स्वयं को क्षेत्राधिकार प्रदान करते हुए इसकी जांच की, जैसे कि यह धारा 156 दं.प्र.सं. के तहत प्रदान किए गए संज्ञेय अपराध का मामला हो, जबकि एफआईआर में किसी संज्ञेय अपराध का उल्लेख नहीं किया गया था, जो कानून में स्वीकार्य नहीं है। पुलिस ने बाद में धारा 186 भा.दं.सं. को जोड़ा, और सीजेएम, वाराणसी ने धारा 353 सपठित धारा 186 भा.दं.सं. के अपराध का संज्ञान लिया, जबकि किसी भी लोक सेवक द्वारा सीजेएम या किसी भी अदालत में कोई शिकायत नहीं की गई थी, जैसा कि धारा 195 (1) दं.प्र.सं. के तहत अपेक्षित है।

37. हम इस स्थिति से अवगत हैं कि जहां दर्ज की गई एफआईआर के आधार पर किसी संज्ञेय या असंज्ञेय अपराध की जांच के दौरान नए तथ्य सामने आते हैं, जो भा.दं.सं. के तहत असंज्ञेय अपराध का गठन करेंगे, ऐसी स्थिति में पुलिस असंज्ञेय अपराध की जांच जारी रख सकती है, जिस पर कोई विवाद नहीं हो सकता है।

इस प्रकार, यदि यह मान भी लिया जाए कि किसी संज्ञेय अपराध की जांच के दौरान, असंज्ञेय अपराध के तत्वों की खोज हो जाती है, तो पुलिस ऐसे असंज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय में लिखित शिकायत या न्यायालय के आदेश के बिना भी जांच जारी रख सकती थी, क्योंकि यह भी धारा 155(4) दं.प्र.सं. के तहत संज्ञेय अपराध माना जाएगा, लेकिन जहां संज्ञेय कार्यालय की जांच स्वयं विधिक कमी से ग्रस्त है और प्रारंभिक चरण से ही अधिकार क्षेत्र के बिना है, तो पूरी जांच निष्फल हो जाएगी। इस कारण से, पुलिस धारा 155 (4) दं.प्र.सं. के तहत बचाव की मांग नहीं कर सकती है, जब एफआईआर में संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया गया हो।

38. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अपीलकर्ता द्वारा कथित रूप से किया गया अपराध, जैसा कि एफआईआर में बताया गया है, सबसे अच्छा, धारा 186 भा.दं.सं. के तहत एक गैर-संज्ञेय अपराध हो सकता है, हालांकि धारा 186 भा.दं.सं. का एफआईआर में उल्लेख भी नहीं किया गया है। यह स्पष्ट है कि धारा 186 भा.दं.सं. बाद में जोड़ी गई थी, जिसका सीजेएम ने बाद में संज्ञान लिया। एफआईआर से यह संकेत मिलता है कि जिला प्रोबेशन अधिकारी द्वारा सिटी मजिस्ट्रेट को एक पत्र लिखा गया था, लेकिन उक्त पत्र धारा 353 भा.दं.सं. के तहत एफआईआर दर्ज करने से संबंधित है, न कि धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध के लिए। इसके अलावा, दिनांक 03.06.2015 का उक्त पत्र सीजेएम, वाराणसी को संबोधित नहीं था, जिनके समक्ष ऐसी लिखित शिकायत की जानी थी ताकि न्यायालय को धारा 186 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संज्ञान लेने में सक्षम बनाया जा सके।

39. हमने सह-अभियुक्त श्रीमती सुजैन जॉन द्वारा दायर पहले के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.10.2015 के आदेश का भी अवलोकन किया है, जिसमें उच्च न्यायालय ने सीजेएम, वाराणसी की अदालत में लंबित उसी मामले अपराध संख्या 290/2015 में दिनांक 20.6.2015 के आरोप पत्र संख्या 162/2015 को इस आधार पर रद्द करने से इनकार कर दिया था कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन करने और उस स्तर पर मामले के तथ्यों पर गौर करने के बाद, यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदक के खिलाफ कोई

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा ।

अपराध नहीं बनता है, और बार में किए गए सभी प्रस्तुतियां तथ्यों के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिन पर अदालत द्वारा धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत फैसला नहीं सुनाया जा सकता है, और उस स्तर पर केवल प्रथम दृष्टया मामले को इस अदालत द्वारा आर. पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866; हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (उपरोक्त); बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 एससीसी (क्रि) 192; और झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक और अन्य, 2005 एससीसी (क्रि) 283 के मामलों में निर्धारित कानून के प्रकाश में देखा जाना है।

40. हालांकि, यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय ने इस अपील में ऊपर चर्चा किए गए किसी भी मुद्दे की जांच नहीं की। उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया, तथा दिनांक 13.10.2015 के उक्त आदेश के विरुद्ध दायर एसएलपी को इस न्यायालय द्वारा समय रहते खारिज कर दिया गया।

इस न्यायालय ने दोहराया है कि बिना कोई विस्तृत कारण बताए किसी विशेष अनुमति याचिका को तत्काल खारिज करना संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत किसी कानून की घोषणा या बाध्यकारी मिसाल नहीं बनता है। पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर (2011) 14 एससीसी 770 में, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

“113. इस न्यायालय द्वारा की गई अनेक न्यायिक घोषणाओं से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि विशेष अनुमति याचिका को समय रहते खारिज करने का अर्थ यह नहीं है कि उच्च न्यायालय के उस निर्णय का तर्क मान्य हो जाता है जिसके विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी या विवादित निर्णय और आदेश याचिका खारिज करने के इस न्यायालय के आदेश के साथ विलीन हो जाता है। इसका सीधा सा मतलब है कि इस न्यायालय ने मामले को किसी कारण से जांच के लायक नहीं माना, जो मामले की योग्यता के अलावा अन्य हो सकता है। इसलिए, विस्तृत कारणों के बिना विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने का आदेश, किसी कानून की घोषणा या बाध्यकारी मिसाल नहीं बनता है।”

इस प्रकार, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय का उक्त निर्णय तथा इस न्यायालय द्वारा समय रहते उसे खारिज कर दिया जाना, इस अपील के मेरिट के आधार पर निस्तारण होने में बाधा नहीं बनेगा।

41. इन परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि सीजेएम, वाराणसी द्वारा धारा 353 और 186 भा.दं.सं. के अंतर्गत अपराधों का संज्ञान लेना कानून के प्रावधानों के अंतर्गत अपेक्षित प्रक्रिया का पालन करके नहीं किया गया था, और तदनुसार, यह कानून के विपरीत है, इसके अनुसरण में पारित सभी आदेश बरकरार नहीं रह सकते हैं और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है।

42. ऊपर वर्णित कारणों से, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि अपीलकर्ता सीजेएम, वाराणसी के समक्ष अपीलकर्ता के विरुद्ध लंबित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का मामला बनाने में सक्षम है।

43. तदनुसार, हम सीजेएम, वाराणसी के न्यायालय में लंबित थाना कैंट, जिला वाराणसी के अंतर्गत धारा 353 और 186 भा.दं.सं. के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 290/2015 से उत्पन्न मुकदमा संख्या 9790/2015

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

और सीजेएम, वाराणसी द्वारा संज्ञान लेने और अपीलकर्ता को समन जारी करने के परिणामस्वरूप पारित आदेशों को रद्द करते हुए इस अपील को स्वीकार करते हैं।

परिणामस्वरूप, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 संख्या 35311/2023 के तहत आवेदन में पारित दिनांक 22.09.2023 के आक्षेपित आदेश को भी अपास्त किया जाता है।

मामले का परिणाम: अपील को अनुमति दी गई।

हेडनोट्स अंकित ज्ञान द्वारा तैयार किये गए